आरक्षण के लिये आंदोलन और आगे की राह

संदर्भ

भारत में आरक्षण का मुद्दा इस एक प्रश्न से जुड़ा हुआ है कि क्या जनसंख्या के एक वर्ग विशेष को आरक्षण देने का आधार "जाति" अथवा "वर्ग" होना चाहिये या नहीं? इस प्रश्न के संदर्भ में बहुत-से लोगों का विचार है कि आरक्षण के मानदंड के रूप में केवल आर्थिक पिछड़ेपन को ही आधार बनाया जाना चाहिये, जबकि कुछ लोगों का विचार यह है कि इसमें सामाजिक पिछड़ेपन को भी शामिल किया जाना चाहिये।

इंदिरा साहनी मामले से उत्पन्न हुआ यह विचार

- ऐतिहासिक इंदिरा साहनी मामले (1992) में (इसे मंडल विवाद पर फैसले के रूप में याद किया जाता है) सर्वोच्च न्यायालय द्वारा आरक्षण के संदर्भ में सामाजिक पिछड़ेपन को एक कसौटी बना दिया गया, साथ ही इसके निर्धारण के लिये एक नई एवं स्वतंत्र संस्था 'राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग' के गठन का आदेश भी दिया गया। तब से आरक्षण संबंधी मामलों की सिफारिश इसी संस्था द्वारा की जाती है।

जाति आधारित आरक्षण के विरुद्ध आंदोलन

- जाति आधारित आरक्षण के खिलाफ आंदोलन उस समय चरम पर पहुँच गया जब वर्ष 1989 में मंडल आयोग ने अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी) के लिये आरक्षण की शुरुआत की।
- समय के साथ आरक्षण विरोधी आंदोलन ने हिंसक रूप धारण कर लिया और दूसरे वर्गों ने भी अपने लिये आरक्षण की मांग आरंभ कर दी।
- हाल के दिनों में देश के विभिन्न हिस्सों में कई समुदायों द्वारा (इनमें कई प्रभावशाली और हाशिये पर खड़े समुदाय भी शामिल है) आरक्षण की मांग हेतु आंदोलन करने की घटनाएँ सामने आई हैं। इसमें गुजरात के पाटीदार, राजस्थान के गुज्जर, हरियाणा के जाट, असम की चाय जनजाति और सबसे हालिया महाराष्ट्र के मराठा समुदाय जैसे प्रभावशाली समुदाय का आंदोलन शामिल है। इनके द्वारा किये गए आंदोलनों के लिये कई कारकों को ज़िम्मेदार माना जा सकता है जिनमें कृषि संकट और बढ़ती बेरोज़गारी जैसे पक्ष भी शामिल हैं।

कृषि संकट

- उपज की गिरती कीमतों, अविकसित सिंचाई प्रणाली, भूमि अधिग्रहण के आकार तथा सरकारी सहायता की कमी के कारण खेती एक घाटे का व्यवसाय हो गया है। इन सभी कारकों के परिणामस्वरूप शक्तिशाली कृषक समुदाय न केवल ऋण ग्रस्तता और आजीविका की समस्या से जूझ रहा है बल्कि अवसाद की स्थिति में पहुँचकर आत्महत्या जैसे पीड़ादायी विकल्प को चुनने के लिये भी विवश हो गया है।
- जिन समुदायों ने एक समय में सफल हरित क्रांति के दौर का अनुभव किया है अब उन्हें ग्रामीण अर्थव्यवस्था में कृषि संकट और गहन ठहराव की स्थिति का सामना करना पड़ रहा है। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के अनुसार, भारत में औसत भूमि धारण 1960-61 के 2.63 एकड़ से घटकर 2003-4 में 1.06 एकड़ रह गई है, अर्थात् चार दशकों में देश में औसत भूमि धारण क्षमता में लगभग 60% की कमी दर्ज की गई।

बेरोज़गारी

- जैसे-जैसे खेती कम लाभदायक बनती जा रही है, ग्रामीण युवाओं को रोज़गार की तलाश में शहरों की ओर प्रस्थान करना पड़ रहा है। भाषायी अज्ञानता, परिवेश में अंतर जैसे संवेदनशील कारकों के चलते ग्रामीण युवाओं के लिये निजी क्षेत्र में उच्च वेतन पर नौकरी प्राप्त करना बहुत मुश्किल होता है जिस कारण उन्हें निम्न वेतन वाली नौकरियों के विकल्प को चुनना पड़ता है। चूँकि सरकारी नौकरियों के लिये चुने जाने का मार्ग दिनोंदिन दुर्लभ होता जा रहा है इसलिये निजी क्षेत्रों की ओर रुख करना उनकी विवशता भी है और आवश्यकता भी।
- सरकारी नौकरी न मिल पाने और निजी क्षेत्र में कम वेतन वाली नौकरी के विकल्प के कारण ही गुजरात में पाटीदार समुदाय द्वारा निजी शैक्षणिक संस्थानों का अंत करने की मांग की गई थी, उनका आरोप था कि जहाँ एक ओर ये संस्थान शिक्षा हेतु उच्च कीमत वसूलते हैं, वहीं दूसरी ओर शिक्षा में गुणवत्ता की कमी के कारण ये विद्यार्थियों को नौकरियाँ दे पाने में भी असमर्थ हैं।
- नौकरियों की कमी होना एक ऐसा कारक है जिसके लिये अनारक्षित समुदाय द्वारा आरक्षण नीतियों को दोषी ठहराया जाता है। असमान आर्थिक विकास तथा असमान लाभ वितरण का ही परिणाम है कि आज देश का एक खास वर्ग अपनी दयनीय अवस्था के लिये आरक्षण को ज़िम्मेदार मानता है।

कॉर्पोरेट संचालित आर्थिक मॉडल: अमीरों और गरीबों के बीच बढती दूरी का प्रमुख कारण

- जैसा कि हम सभी जानते हैं, उदारीकरण के बाद से निजी उद्योगों की संख्या और संवृद्धि में काफी उछाल आया है, जिसके बाद से कृषक समुदाय द्वारा कृषि के विकल्प को प्रमुखता न देते हुए आजीविका के लिये व्यवसाय अथवा निजी क्षेत्र की नौकरी के विकल्पों को प्राथमिकता देनी आरंभ कर दी गई।
- यही कारण है कि पिछले कुछ समय से किसानों ने उच्च कीमतों पर अपनी कृषि भूमि को बेचते हुए रोज़गार के दूसरे विकल्पों को चुनना शुरू कर दिया।
- हालाँकि, जल्द ही उन्हें यह एहसास हो गया कि वे इन उद्योगों से बहुत अधिक लाभ नहीं उठा रहे हैं। वहीं दूसरी ओर, भूमि बेचने से प्राप्त धन भी समय के साथ समाप्त हो गया और निराशा की स्थिति गहराती चली गई।

ओबीसी की ओर रुख

- ऐसी स्थिति में हुआ यह कि जब समाज की प्रमुख जातियों को यह लगने लगा कि उनकी शक्ति में गिरावट आ रही है, तो उन्होंने ओबीसी, विशेष रूप से क्रीमी लेयर के दर्जे में आने की ओर रुख किया।
- यदि इस संदर्भ में थोड़ा और गहराई से विचार करें तो हम पाएंगे कि मंडल आयोग से पहले भी आरक्षण के संबंध में लोगों की बहुत-सी शिकायतें थीं, लेकिन आयोग की सिफारिशों के बाद से इन शिकायतों ने गंभीर संघर्ष या उथल पुथल का रुख धारण कर लिया।
- कई सर्वेक्षणों और आधिकारिक आँकड़ों ने इस तथ्य की ओर इशारा किया कि ओबीसी को प्रदत्त आरक्षण ने गरीबों को सशक्त करने में एक अहम भूमिका निभाई है। इसके बावजूद इसने पहचान की राजनीति की नई नस्ल को तो जन्म दिया ही है, साथ ही दो समकक्ष समुदायों के बीच हिंसा तथा अशांति का वातावरण भी पैदा किया है।

राजनीतिक हित

- बहुत से आंदोलनों को तो केवल इसलिये हवा दी गई ताकि कुछ राजनीतिक दल अपना मतलब साध सकें। हालाँकि, लोकतंत्र में आनुपातिक प्रतिनिधित्व की मांग करना जायज़ होता है, लेकिन इन आंदोलनों को शायद ही कभी अधिकृत लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये आयोजित किया जाता है। इन आंदोलनों में शामिल अधिकांश लोगों का उद्देश्य अपने राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति करना होता है।

आगे की राह

- सबसे पहले इस तथ्य पर विचार करने की आवश्यकता है कि अधिकांश आंदोलनकारी किसान वर्ग से आते हैं। ऐसे में बहुत ज़रुरी हो जाता है कि कृषि सुधारों के संबंध में तत्काल कार्यवाही की जाए तथा रोज़गार के अवसरों का सृजन किया जाए।
- दूसरा, यदि सामाजिक न्याय का आधार आरक्षण नीति है, तो भारत एक ऐसे मोड़ पर खड़ा है जहाँ सामाजिक न्याय को केवल बड़े पैमाने पर नौकरियाँ पैदा करके सुनिश्चित किया जा सकता है, न कि जाति के आधार पर आरक्षण को बढ़ावा देकर।
- तीसरा, भारत में आरक्षण के दायरे में मुख्यत: हाशिये पर खड़े समूहों को शामिल किया जाता है। ऐसे में हमें गरीबी को इस दायरे में शामिल करने पर विचार करना चाहिये ताकि आरक्षण का लाभ वर्ग अथवा समुदाय विशेष को न मिलकर ज़रूरतमंदों को मिल सके।
- चौथा, आरक्षण का प्रयोग राजनैतिक हितों को साधने में न किया जा सके, इस संबंध में भी आवश्यक कदम उठाए जाने चाहिये ताकि किसी भी लोभी व्यक्ति द्वारा अपने राजनीतिक हितों हेतु एक उपकरण के रूप में आरक्षण का प्रयोग न किया जा सके।
- इसके अतिरिक्त सरकार और लोगों को निराश वर्गों के उत्थान के लिये मिलकर काम करने की ज़रूरत है। यदि शैक्षणिक संस्थानों में आरक्षण की व्यवस्था मौजूद है, तो उच्च शिक्षा में अनारक्षित वर्ग के लिये आवश्यक सीटों की संख्या में वृद्धि की जानी चाहिये, ताकि कोई भी योग्य उम्मीदवार उच्च शिक्षा प्राप्त करने से वंचित न रहे।

निष्कर्ष

हमें आरक्षण को और अधिक महत्त्वपूर्ण एवं तटस्थ होकर देखने की ज़रूरत है, जहाँ इसने कई वर्गों को लाभान्वित किया है, वहीं यह एक सीमित रियायत भी है जो हाशिये पर खड़े लोगों को सामाजिक और आर्थिक असमानता से मुक्त कर मुख्यधारा में शामिल करने का प्रयास करता है। शिक्षा, रोज़गार या सामाजिक स्थिति के मामले में अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति समुदाय अभी भी अन्य समुदायों की तुलना में काफी पीछे हैं। इस प्रकार, यह बहुत महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि इस समस्या को समग्र रूप से संबोधित किया जाए, न कि किसी एक वर्ग विशेष के संदर्भ में इस परिभाषा को सीमित करने का प्रयास किया जाए।

PDF Refernece URL: https://www.drishtiias.com/hindi/printpdf/agitation-for-reservations-and-the-way-out